P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-4* ISSUE-6*February-2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

मेवाड़ शैली में वल्लभ सम्प्रदाय का चित्रण

दिनेश कुमार वर्मा
व्याख्याता,
चित्रकला विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
बून्दी,राजस्थान

सारांश

कला और साहित्य पर धार्मिक विचार–धारा एवं स्थानीय वातावरण का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। मेवाड़ अपने प्राकृतिक सौन्दर्य एवं कृष्ण भक्ति के लिए प्रसिद्ध है। वैष्णव धर्म की परम उपासना यहाँ के लोगों के रग–रग में विद्यमान है। वैष्णव धर्म के प्रचार–प्रसार के साथ यहाँ के लोगों में कृष्ण लालीत्य का अनुराग स्पष्ट देखा जाता है। मथुरा से प्रचारित वल्लभ सम्प्रदाय की मान्यता मेवाड़ क्षैत्र के नाथद्वारा में विकसित हुई जिसका कला पर प्रभाव पड़ा और कला ने उसको सार्थकता प्रदान कर अग्रसर किया। समाज में वैष्णव धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए कलाओं का सहारा लिया और कला ने धर्म के गूढ़तम रहस्यों और लक्षणों को अर्थ निरूपण में सहयोग किया। कला समाज में संवाद का माध्यम बनी तो स्वाभाविक है कि समाज में समयानुकूल रूप परिवर्तित होते रहे। वल्लभ सम्प्रदाय की उत्प्रेरणा से कला सृजन का दायरा बढ़ा एवं कलागत तकनीकी के साथ कृष्ण विषयगत चित्रों की बहुलता भी। इस प्रकार समाज में कृष्ण लीलाओं एवं कृष्ण चरित्र पर आधारित रूपाकारों को चित्रित कला के विषय बने। निःसंदेह, मेवाड़ शैली में वल्लभ सम्प्रदाय की प्रेरणा से सृजित कला अद्‌भुत एवं आध्यात्मिक है जो सदियों से सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं की वाहक बनी हुई है। कलाकारों ने कृष्ण लीलाओं को भित्ति, कपड़े, कागज, हार्डबोर्ड और विभिन्न प्रकार के प्लाई बोर्ड पर जल रंग, तेल रंग और एक्रेलिक रंगों से रूपायित किया। इतना ही नहीं, इन्होंने सचित्र ग्रंथों की रचना की जिनमें कृष्ण विषयक चित्रों को देखा जाता है। कृष्ण की बाल लीलाओं, राधा कृष्ण के प्रेम प्रसंग, नन्द की विदाई, विरहणी राधा, होली, श्रृंगार, क्रीड़ा और गोचारण आदि विषयगत चित्र मेवाड़ शैली की अनुपम निधि है। कृष्ण चरित्र के विलक्षण रूपांकन देश–विदेश के पर्यटकों, धार्मिक लोगों और वल्लभ सम्प्रदाय के उपासकों को निरन्तर आकर्षित करते रहते हैं।

मुख्य शब्द : वल्लभ सम्प्रदाय, धार्मिक विचारधारा, सामाजिक व सांस्कृतिक विचारधारा, कृष्ण लीलाएँ, कृष्ण चरित्र, कृष्ण–राधा, धार्मिक चित्रों का अंकन, भित्ति चित्र, ग्रन्थ चित्र, पिछवाईयाँ, रचनात्मकता, मेवाड़ शैली के प्रमुख चित्रण स्थल और प्रमुख कलाकार आदि।

प्रस्तावना

मेवाड़ में कृष्णोपासना के चित्रांकन की विशिष्ट परम्परा रही है। कलाकार पीढ़ियों से वल्लभ सम्प्रदाय की विचारधारा को अपनाकर कला का सृजन कर रहे हैं। वे धार्मिक ग्रंथों, स्पूट पदों को आधार बनाकर अपने कलागत अनुभवों को सुविधानुसार रचते रहे। मध्यकाल में अपने आश्रयदाताओं के संरक्षण में उनकी आज्ञा के मुताबिक कला का सृजन करते थे। उस समय कला राजा–महाराजाओं की बपौती थी। परन्तु आज का कलाकार स्वतंत्र रूप एवं पूँजीवादी मांग के मुताबिक संघर्षरत है। हालांकि, कलाकार अपने व्यक्तिगत भावों, विचारों और अवधाराणाओं के अनुरूप कला का सृजन करता है। परन्तु बाजारवादी जिज्ञासा उसके अर्न्तमन को विचलित कर देती है। कलाकारों के इस जद्‌दोजहद से जहाँ पारम्परिक कला की मौलिकता का ह्रास हुआ है वहीं नीत–नवीन कलागत तकनीकी और वैश्विक विचारधारा के साथ कला में नवीनता भी देखी गई है।

राजस्थान में मध्यकालीन कला पारम्परिक विचारधारा के साथ प्रचारित होती रही। 13वीं शती से कृष्ण भक्ति आन्दोलन के साथ माधुर्य भावना का प्रचार–प्रसार होने लगा। मेवाड़ में श्रीमद्‌भागवत एवं 12वीं सती में जयदेव कवि द्वारा रचित गीतगोविन्द ने सचित्र ग्रंथों की परम्परा से कृष्ण चरित्र के विविध रूप रूपायित होने लगे। राधा कृष्ण की अलौकिक एवं मनोहारी श्रृंगारिक लीलाओं और प्रेम–प्रसंग से चित्र सृजन में विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति होने लगी। पं. रमीश ने 1455 ई. के लगभग कुम्भलगढ़ के निकट गोगुन्दा के विष्णु

मन्दिर एवं वैष्णव भक्ति की परम्परा में सचित्र ''गीत गोविन्द आख्याइका'' तथा कीरतदास ने 1545 ई. के लगभग जावर में निर्मित गीत गोविन्द सार नामक सचित्र ग्रन्थ रचा जिसमें राधा व कृष्ण की प्रेम क्रिड़ाओं एवं बारह अवतारों का चित्रण है।[1] मेवाड़ में इन चित्रों की आकृतियाँ मोटे आकारों, रेखाओं एवं रंगों से निरूपित है। मेवाड़ में कृष्ण की लीलाओं का चित्रण बहुलता से हुआ है। बालक कृष्ण का स्नान 1550 ई. के लगभग एवं नन्द की विदाई 1580 ई. के लगभग भागवत पुराण ग्रन्थ में रचे गये हैं। इसी प्रकार विरहणी राधा 1550 ई. के लगभग गीत गोविन्द ग्रन्थ से मेवाड़ शैली में अनवरत चित्रण कार्य होने के प्रमाण को दर्शाते हैं।

मेवाड़ में वल्लभ सम्प्रदाय का प्रत्यक्ष प्रभाव नाथद्वारा में श्रीनाथजी के स्वरूप की स्थापना से माना जाता है। मुगलकालीन शासक औरंगजेब ने अकबर कालीन कला और संस्कृति की उदार नीति के प्रति अपनी अनुदार नीति बरतने लगा। हिन्दू पूजाघरों, मन्दिरों, धार्मिक स्थलों की तोड़फोड़ की आज्ञा से समाज में तहलका मच गया। बज्र प्रदेश के विशाल मन्दिरों के कुछैक पूजारियों ने वहाँ की पूजनीय मूर्तियों को संरक्षित रखने हेतु आयोजन करने लगे। धार्मिक आस्था और विचारधारा को बरकरार रखने के लिए वे इधर–उधर भटकने लगे। औरंगजेब जैसे बादशाहों की अनुदार नीति के कारण मुगल साम्राज्य के सीधे आधिपत्य वाले नगरों से आचार्यों ने सुरक्षा की दृष्टि से अपनी आराध्य मूर्तियों को हटाकर देशी रियासतों के राजाओं के संरक्षण में ले जाना श्रेयस्कर समझा।[2] गोवर्धन पर्वत पर स्थित वल्लभ संप्रदाय वालों के प्रमुख मंदिर के श्रीनाथजी के विग्रह को लेकर वहाँ के गोस्वामी श्री दामोदर जी तथा उनके चाचा गोविन्द जी 30 सितम्बर, 1669 को गोवर्धन से निकल पड़े।[3] वे औरंगजेब की रीति–नीति से छिपते–छिपाते राजस्थान में मूर्ति स्थापित करने के लिए इधर–उधर भटकते रहे, लेकिन किसी राजा–जन ने स्वीकार नहीं किया। अंत में महाराणा राजसिंह ने श्रीनाथजी की इस मूर्ति का मेवाड़ में सहर्ष स्वागत किया और 10 फरवरी, 1672 ई. के दिन सीहाड़ गाँव में भव्य समारोह के साथ इस मूर्ति की स्थापना की गई, जो तब से ही नाथद्वारा कहलाने लगा।[4] नाथद्वारा में वल्लभ सम्प्रदाय के अविर्भाव तक ज्यों–ज्यों कृष्णोपासना का विस्तार होता गया त्यों–त्यों राज्य के अनेक लीला स्थलों के साथ धार्मिक चित्रों की भी वृद्धि होती गई।

मध्यकाल में कृष्ण भक्ति भावना की नूतन धारा के कारण प्रदेश में नाथद्वारा का धार्मिक स्थल के रूप में महत्त्व बढ़ने लगा। यह स्थान प्रसिद्ध ही नहीं हुआ बल्कि पावन तथा भक्तों के आकर्षण का केन्द्र भी बन गया। इतना ही नहीं, राधा–कृष्णोपासक भावुक जनों ने महिमा मण्डित मथुरा मण्डल के आध्यात्मिक रूप की कल्पना कर उसे गोलोक का प्रतीक माना जाने लगा। भगवान कृष्ण ने अपनी आनन्दमयी सरस लीलाओं और लोकोपकारी क्रिया–कलापों से भारतीय जन–जीवन को जितना प्रभावित किया उतना अन्य किसी महापुरूष ने नहीं। यही कारण है कि उनको पुरूषोत्तम ही नहीं वरन् परब्रह्म कहा गया।[5] उन्होंने अपनी सरस और सहज बाल जीवन की लीलाओं से सभी को अचम्भित कर दिया। इनकी शौर्यता और धार्मिक भावना का प्रभाव अथ से इति तक रहा। इनकी स्नेहशीलता, सौहार्द्र से परिपूर्ण सेवा–समर्पण, माधुर्य भावना, समन्वय, मित्रता और आम जन–जीवन से सामन्जस्य जैसे आदर्शों से परिपूर्ण इनका जीवन समाज को नई दिशा प्रदान करता है। कला तो सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की भावना से ओत–प्रोत है। निःसंदेह, कृष्ण–चरित्र का दिव्य रूप कला का ही प्रमाण है, जो उनके रग–रग में विद्यमान है।

मध्यकाल में शैव–धर्म के उपरान्त वैष्णव–धर्म का उन्नयन होने के साथ–साथ यह प्रचार–प्रसार पाने लगा। 13वीं सती से अपनी माधुर्य भावना के कारण कृष्ण भक्ति आन्दोलन की अक्षुण्ण धारा समाज में प्रवाहित होने लगी। राधा–कृष्ण की अलौकिक एवं मनमोहित श्रृंगारपरक लीलाओं ने कला सृजन के क्षैत्र में जैन एवं गुजरात शैली की जकड़न को समाप्त कर गतिमान रेखाओं से युक्त रंगीन और ऐन्द्रियक बना दिया, जिससे राजस्थानी कला के रूप में मेवाड़ स्कूल को एक नयी दृष्टि मिली। प्रायः यह भी माना जाता है कि मथुरा–वृन्दावन से वल्लभ सम्प्रदाय के गोस्वामियों के साथ अनेक चित्रकार नाथद्वारा आये, जिनके द्वारा श्रीनाथजी के चित्र बनाये गये। ब्रज एवं मेवाड़ की सांस्कृतिक परम्परा के समन्वय से नाथद्वारा शैली अपनी मौलिकता के साथ विकसित होने लगी। श्रीनाथजी के प्राकट्य एवं रसमय लीलाओं तथा अष्टयाम की सेवा पूजा के रूपांकन कागज और कपड़े पर बनने लगे। परम्परागत शैली में चित्रित श्रीमद्भागवत का श्लोकबद्ध चित्रण संग्रहीत है जिसे यहाँ के ख्याति प्राप्त चित्रकार श्री शुकदेव एवं श्री घासीराम शर्मा ने अपने सहयोगियों को उचित मार्गदर्शन देकर तैयार करवाया था। यह भागवत् सम्बन्धि चित्रों की बहुत बड़ी थाती है तो चित्रकला की अमूल्य निधि भी।[6] परम्परागत शैली के रूप में यहाँ रागमाला, बारहमासा, कृष्ण–चरित्र के चित्रों की प्रधानता है। अधिकांश चित्रों में ब्रज की पावन भूमि का प्रभाव यथा प्रवाहित पतित पावन यमुना का प्रवाहमान शीतल सलिल में खिले कमल पुष्प और गुच्छ का चित्रण एवं सुन्दर, सुशील मनोहारी मोर और पवित्र गायों का अंकन अवश्य मिलता है। धार्मिक और पारम्परिक रीति के अनुसार नाथद्वारा में श्रीनाथजी की सेवा में यमुना जल काम में लिया जाता है, जो मथुरा से मंगवाया भी जाता है।

श्रीनाथजी की भक्ति–भावना और श्रृंगारिक रूप का समाज में बड़ा महत्व है। इनके स्वरूप के पीछे साज–सज्जा के लिए बड़े आकार के कपड़े पर जो पर्दे बनाये जाते हैं, उन्हें पिछवाई कहा जाता है। कपड़े पर पारम्परिक तरीके से बनने वाली कला को पिछवाई के रूप में पहचान मिली जो नाथद्वारा की मौलिक देन है। मूलतः पिछवाईयाँ श्रीनाथजी के उत्सवों तथा कृष्ण लीलाओं के विषयगत रूपों के लिए तैयार की जाती है। सदियों से चली आ रही यह पारम्परिक विचारधारा नाथद्वारा में आज भी बरकरार है। इस प्रकार मन्दिरों में भगवान की झांकी की शोभा के लिए बड़े–बड़े पटचित्र बनाने की प्रथा नाथद्वारा में परम्परा रही है, अतः कृष्ण लीला संबंधी ये पिछवाईयाँ या पड़ व्यावसायिक रूप से भी बहुलता से

बनी है। श्रीनाथजी की विभिन्न झांकियों तथा रासलीला इन पिछवाईयों के प्रमुख विषय रहे हैं।[7] प्रायः यह भी माना जाता है कि पुरानी पिछवाईयाँ पुष्टि–सम्प्रदाय के मन्दिरों, संग्रहालयों एवं कला–मर्मज्ञों और कला प्रेमियों के पास संरक्षित है। वर्तमान में पिछवाईयों का निर्माण कुशल व अकुशल कलाकारों द्वारा बहुत ज्यादा होने लगा है, जिन्हें होटलों, सार्वजनिक भवनों में लगाया जाता है। करीब तीन सौ वर्ष पुरानी यहाँ की कला में पिछवाई व कागज पर लघु चित्रों के साथ–साथ भित्ति चित्रण के ऐसे साक्ष्य मिलते हैं जिनमें कलाकारों की रचनात्मकता और प्रयोगवादिता दृष्टिगोचर होती है। इस धार्मिक चित्रशैली से जुड़कर रचनात्मक कार्य करने वाले मेवाड़ के कलाकारों में सा. नाना एवं सा. मीठाराम, कविराज जगन्नाथ, सुखदेव, घासीराम शर्मा, नरोत्तम नारायण शर्मा, बी.जी. शर्मा, इन्द्र शर्मा, घनश्याम शर्मा, खूबीराम, चतुर्भुज, उदयराम, देवकृष्ण आदि प्रमुख हैं।

मेवाड़ प्रदेश में राजा–महाराजाओं के सानिध्य में भित्ति चित्रण की परम्परा अधिक रही। यहाँ प्रमुख रूप से राजमहलों, जागीरदारों की हवेलियों, दुर्ग एवं निजी भवनों तथा मन्दिरों में भित्ति चित्रांकन की रचनात्मकता को देखा जाता है। जिनमें मुख्यतः उदयपुर में सर्वऋतु विलास, कर्ण विलास, जनानी ड्योडी, कृष्ण विलास, अम्बामाता का मन्दिर, बापनाजी की हवेली, धायभाई जी की हवेली, करजाली की हवेली, नाथद्वारा के महुवा वाला अखाड़ा, देवगढ़ आदि स्थानों पर भित्ति चित्रण हुआ।[8] यहाँ के भित्ति चित्र राजा–महाराजाओं के सान्निध्य में पल्लवित होते रहे।

उद्देश्य

भारतीय समाज में वैष्णव धर्म की परम उपासना का बड़ा महत्व रहा है। समाज में वैष्णव धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए कलाओं का सहारा लिया गया और कला ने धर्म के गूढ़तम रहस्यों और लक्षणों को अर्थ निरूपण में सहयोग देकर अग्रसर किया। राजस्थान की मेवाड़ शैली में वल्लभ सम्प्रदाय का प्रचार–प्रसार होता रहा साथ ही कलाकारों ने वल्लभ सम्प्रदाय की उत्प्रेरणा से कला का सृजन करते रहे। इस रूप में मेरा मंतव्य मेवाड़ शैली में वल्लभ सम्प्रदाय का चित्रण विषय को रेखांकित करने का रहा। मेवाड़ शैली में पारम्परिक और धार्मिक विचार–धारा के साथ साथ कृष्ण चरित्र, कृष्ण भक्ति, कृष्ण लीलाओं, राधा–कृष्ण के विषयगत चित्रों, भित्ति चित्र, ग्रन्थ चित्रण, पिछवाईयाँ, मेवाड़ शैली के प्रमुख चित्रण स्थल और प्रमुख कलाकारों की रचनात्मकता आदि को अलोकित करना रहा। अतः इस शोध प्रपत्र में उक्त विचारों का एक संक्षिप्त रूप में अध्ययन किया गया है। जो वल्लभ सम्प्रदाय की उत्प्रेरणा से सृजन कर्म को निर्विवाद रूप से सत्य को दर्शाता है।

देवगढ़ भित्ति चित्र

गोधूली बेला– 1813 ई. में निर्मित माना जाता है। यहाँ के भित्ति चित्रों पर वल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

जनानी ड्योडी के भित्ति चित्र

यहाँ कृष्ण लीलाओं के चित्रावशेष मिले हैं।

दौलतराम जी की हवेली

कृष्ण व गोपियों की होली के साथ ही श्रृंगार के चित्र देखे जाते हैं।

महुआ वाला अखाड़ा

श्रीनाथ जी के मन्दिर में प्राचीनतम चित्रों का निर्माण हुआ।

इसी प्रकार विभिन्न वैष्णव मंदिरों में कृष्ण लीलाओं के विविध चित्र बनवाये जाते रहे। इन स्थानों पर सांस्कृतिक विषयों के साथ–साथ राजसी वैभव, शिकार व तीज त्यौहारों का चित्रण प्रमुखता से हुआ है।

होली, दीपावली तथा विशिष्ट उत्सवों पर मन्दिर की दीवारों पर भित्ति चित्र, कागज व कपड़े पर बने लघु चित्र में श्रीनाथजी की लीलाओं का अंकन नाथद्वारा शैली की निजी विशेषताओं को दर्शाता है। धार्मिक अनुष्ठानों एवं वैष्णव सम्प्रदाय के नियमों के आधार पर वर्ष–पर्यन्त उत्सवों की झांकी के चित्रण की पारम्परिक कला यहाँ देखी जाती है। चौबीस उत्सव के अतिरिक्त अन्नकूट, छप्पन भोग, कलियों की हट्टी, बंगले के उत्सव आदि का बहुतायत रूपांकन हुआ है।

महाराणा कुम्भा (1433–1468ई.) को राज्य मेवाड़ के इतिहास में कला का स्वर्ण युग माना जाता है। इनके राज्य काल में स्थापत्य कला, चित्रकला का विकास हुआ। इन्होंने भित्ति चित्रों के साथ–साथ सचित्र ग्रंथ भी निर्मित करवाये। महाराणा जगतसिंह (प्रथम) वैष्णव धर्म के परम उपासक थे। उनके राज्य काल में सूरदास के पदों पर आधारित सूर सागर नामक सचित्र ग्रंथ लगभग 1640 ई. में ही चित्रित हो चुका जिसके चित्र जगदीश गाइन्का एवं गोपी कृष्ण कानोडिया संग्रह कलकत्ता में सुरक्षित है।[9] मेवाड़ में इनके राज्य काल से साहीबदीन नामक कलाकार ने कई चित्रों की रचना की। चित्र मेघमल्हार 1628 ई. साहीबदीन द्वारा रचित चित्र में ओजस्वीता और भाविभिव्यक्ति की प्रोढ़ता देखी जाती है। इसी प्रकार गीत गोविन्द में राधा के विरह, कृष्ण की बाल क्रिड़ाओं, काले नाग का वर्गीकरण आदि चित्रों में सामन्जस्य, भावनात्मक अभिव्यक्ति और वैचारिक एकसूत्रता परिलक्षित होती है। 1648 ई. में साहबदीन नामक चित्रकार द्वारा उदयपुर में श्रीमद्भागवत के चित्र अंकित किये। भागवत पुराण की अन्य चित्रित प्रतियाँ जोधपुर, कोटा तथा राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में है।[10] इसी प्रकार इस मेवाड़ क्षैत्र में बाल गोपाल स्तुति, श्रीमद्भागवत, सूरसागर, गीत गोविन्द, कवि प्रिया, रसिक प्रिया आदि सचित्र ग्रंथों के साथ कृष्ण लीला के फुटकर चित्र बहुलता से बने।

महाराणा संग्राम सिंह द्वितीय वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थी। इनका काल (1710–1734 ई.) में धार्मिक चित्रों की रचना अधिक हुई। इनके वंशजों ने चिरकाल तक वल्लभ सम्प्रदायी कला एवं कृष्ण चरित्र सम्बन्धि विषयवस्तु को प्रमुखता दी। इस काल में सूर एवं बिहारी द्वारा रचित पदों पर चित्रकारों ने चित्रों का निर्माण किया, जिसमें चित्रकार कविराज जगन्नाथ का नाम उल्लेखनीय है।[11] केशवकृत रसिक प्रिया पर चित्रकारों ने मनोरम चित्रण किया। इतना ही नहीं मेवाड़ शैली में कृष्ण चरित्र के आधार पर ऊधो–माधो संवाद भी चित्रित किया गया है।

मेवाड़ शैली में वल्लभ सम्प्रदाय के प्रभाव से सूर सागर की पदावलियाँ और बिहारी सतसई में बिहारी की भावनाएँ सबसे अधिक मुखरित हुई है। सूर सागर एवं भागवत के चित्रों में पदावलियों के साथ–साथ नन्द बाबा कृष्ण जन्म पर गोदान देते हुए, गायों का पूजन करते हुए, ग्वालों की पगड़ी बंधवाते हुए, वस्त्राभूषण बांटते हुए, गाते बजाते ग्वालाबाल ब्रजवासीगण दही–दूध की होली खेलते हुए, अन्तः पुर वासी स्वजन, बधाईयाँ गाती बृजवनिताएँ, प्रसूतिगृह में यशोदा और उनके सम्बन्धित अनेक दृश्यों का चित्रकार ने एक ही फलक पर बहु आयामी अंकन किया है, जो मेवाड़ के चित्रकारों की कार्यकुशलता के अद्भुत उदाहरण हैं।[12] चित्रकार ने धार्मिक चित्रों को एक ही फलक पर दृष्यजन्यलघुता का अच्छा प्रयोग करते हुए घटनाओं का विवरण रूपायित किया है जिससे दर्शक आसानी से एक भाव के बाद दूसरे भाव का रसास्वादन कर सकता है। भगवान कृष्ण के क्रिड़ारत चित्रों में चित्रकार ने ब्रजवासी बनकर अपने भावों की सफल अभिव्यक्ति की है। भक्त कवियों ने शब्दों को बांधकर सुगम शब्दावलियों द्वारा कृष्ण की महिमा को मंडित किया वहीं चित्रकारों ने उसे रेखा, रंगों और तुलिका से साकार रूप देकर अमर कर दिया है। धार्मिक चित्रों की यह परम्परागत और प्रयोगवादी विचारधारा आज भी बरकरार है। नाथद्वारा के बाजार में कुशल व अकुशल कलाकारों द्वारा रचित अनेक प्रकार की कलाकृतियाँ देखने को मिलती हैं।

17वीं से 19वीं शती के चित्रों में कृष्ण–चरित्र की बहुलता रही जिसमें माता यशोदा, नन्दगोपाल, गोपियाँ तथा कृष्ण का दिव्य रूप आदि का चित्रण विशेष है। कृष्ण के बालपन चरित्र के फलस्वरूप स्त्रियों की आकृति में प्रोढ़ावस्था, शारीरिक स्थलता और भावों में वात्सल्य की झलक दर्शनीय है। पुरूषों में गुसाईयों के पुष्ट कलेवर नन्द और आमजन तथा बाल गोपालों के भावपूर्ण चित्रण नाथद्वारा शैली में विशेष हुए हैं। कृष्ण लीलाओं को आधार बनाकर कलाकारों ने अनेक ग्रंथ चित्रों का निर्माण किया। कृष्ण की लीलाओं को लेकर 17वीं से 19वीं शताब्दी में कई चित्रित ग्रन्थ तैयार किये गये हैं जो उदयपुर के तथा कोटा के संग्रहालयों में सुरक्षित है।[13] श्रीमद्भागवत् गीता आदि ग्रंथों के अनुरूप कृष्ण की विविध लीलाओं का चित्रण करने की प्रथा नाथद्वारा में आज भी बरकरार है। वल्लभ सम्प्रदाय की परम्परा के अनुकूल नाथद्वारा शैली में श्रीनाथजी के श्रृंगार में छोटी से छोटी वस्तु का अंकन अनिवार्य रहा है। इसी प्रकार कृष्णावतार बाल रूप श्रीनाथजी को जिन वैभवपूर्ण साधनों से रिझाया जाता है उनमें संगीत और चित्रकला प्रमुख रही है।

राज्य में वल्लभ सम्प्रदाय के साथ पल्लवित–पुष्पित धार्मिक मान्यताओं के प्रचार–प्रसार में कला का सहयोग रहा और कला ने दुनियाँ में धार्मिक चेतना और जागरण की लहर को अधिकाधिक प्रवाहित किया। 19वीं शती से मेवाड़ शैली के चित्रों की व्यापारिक बहुलता बढ़ने के कारण रेखाओं में भदेसापन, रंग निरूपण में बिखराव आने लगा। फोटोग्राफी के प्रभाव से मेवाड़ शैली की मौलिकता का ह्रास होने लगा। कलाकार एक ओर पारम्परिक और सांस्कृतिक मान्यताओं के साथ कला का सृजन कर रहे हैं वहीं, दूसरी ओर वैश्विक कलाधारा के प्रभाव से बदलती हुई सामाजिक मान्यताओं और स्वच्छन्दता पूर्ण परिवर्तन के साथ कला रचना को अन्जाम दे रहे हैं। इतना ही नहीं, प्रयोगवादी नजरिये के साथ कला सृजन का आग्रह प्रबल होता जा रहा है। इससे कला रचना में धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यता से सम्बन्धित पुष्टि मार्गीय इतिहास का रूपांकन मात्र विषय के रूप में देखे जाते हैं। बावजूद, श्रीनाथजी के स्वरूप और पिछवाईयों के वैश्विक व्यापार के कारण लगभग 35 कुटुम्बों के पुश्तैनी कलाकार आज भी नाथद्वारा शैली में विभिन्न माध्यमों में चित्रांकन कर जिविकोपार्जन कर रहे हैं।

निष्कर्ष

मेवाड़ की चित्रण परम्परा कृष्ण भक्ति और वैष्णव धर्म के प्रचार–प्रसार के समानान्तर ही विकसित हुई जिसके प्रमाण हमें प्राप्य ग्रन्थों एवं अवशेषों से मिलते हैं। मेवाड़ के प्रमुख केन्द्र उदयपुर, नाथद्वारा, चावंड, गोगुन्दा, एकलिंगजी के अतिरिक्त मेवाड़ के विभिन्न ठिकानों देवगढ़, शाहपुरा और मन्दिरों आदि स्थानों का कला के संरक्षण एवं संवर्द्धन में महत्वपूर्ण योगदान रहा। यहाँ चित्रकला एवं भित्ति चित्रण की परम्परागत विचारधारा पर वल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव रहा जिससे कला में कृष्णोपासना, कृष्ण चरित्र, कृष्ण लीलाओं और क्रिड़ाओं के चित्रों की विविधता परिलक्षित होती है। मेवाड़ के प्रमुख स्थानीय कला केन्द्रों में विविधता होने के साथ–साथ शैलीगत आधार और रचनाकारों की रचनात्मकता तथा भित्ति चित्र और लघु चित्रों का वर्णात्मक अध्ययन एक भावी शोध सम्भावनाओं को उजागर करता है। वस्तुतः रचनाकारों के रचनात्मक रूपाकारों और विषयगत भावों में सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति नवीनता को दर्शाती है। उपयुर्क्त तथ्यगत रूप से यह स्पष्ट होता है कि मेवाड़ की कला में सौन्दर्य और आध्यात्मिक विचारों के अद्भुत समन्वय से कला का प्रचार–प्रसार हुआ। कला के नियामक कारकों की पूर्ति के अनुसार वल्लभ सम्प्रदाय की उत्प्रेरणा से सृजन–धर्म का निर्वाह हुआ है यह निर्विवाद रूप से सत्य को दर्शाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *वशिष्ठ, डॉ. राधाकृष्ण : मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा, यूनिक ट्रेडर्स, चौड़ा रास्ता, जयपुर,सन् 1984,पृष्ठ 90*
2. *सम्पादक : नीरज, डॉ. जयसिंह, डॉ. भगवती लाल शर्मा : राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, अठारहवां संस्करण 2007, पृष्ठ 21*
3. *नीरज, डॉ. जयसिंह : राजस्थानी चित्रकला, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 31*
4. *वही, पृष्ठ 31, 32*
5. *सम्पादक :– सुमहेन्द्र : आकृति 80, राजस्थान ललित कला अकादमी प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ 27*
6. *वही, पृष्ठ 30*
7. *नीरज, डॉ. जयसिंह : कला का सृजनात्मक संसार, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर–2,प्रथम संस्करण 1999, पृष्ठ 14*

8. *उपाध्याय, डॉ. विद्यासागर : आकृति मेवाड़ कला विशेषांक, जनवरी–मार्च 1998, पृष्ठ 28, 29*
9. *वशिष्ठ, डॉ. राधाकृष्ण : मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा, यूनिक ट्रेडर्स, चौड़ा रास्ता, जयपुर, सन् 1984, पृष्ठ 25*
10. *अग्रवाल, डॉ. गिर्राज किशोर : कला और कलम, अशोक प्रकाशन मन्दिर, सांकेत कॉलोनी, अलीगढ़, उ. प्र., पृष्ठ 152*
11. *वशिष्ठ, डॉ. राधाकृष्ण : मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा, यूनिक ट्रेडर्स, चौड़ा रास्ता, जयपुर, सन् 1984, पृष्ठ 06*
12. *वहीं, पृष्ठ 52*
13. *शर्मा, डॉ. गोपीनाथ : राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, दसवां संस्करण 2007, पृष्ठ 103*